

13-स्रष्टा का परम प्रसाद—प्रखर प्रज्ञा

अध्याय 1: चेतना की सत्ता एवं उसका विस्तार

****प्रश्न 1:** जड़ और चेतन में क्या संबंध है? क्या चेतना का अकेले अस्तित्व संभव है? इस संसार में जड़ और चेतन एक दूसरे से गुंथे हुए हैं। शरीर (काया) जो जड़ है, तभी तक काम करता है जब तक उसमें चेतना (प्राण) होती है। प्राण निकलने पर शरीर निर्जीव हो जाता है। चेतना का अपना निराकार अस्तित्व तो है, जो सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन अपनी गतिविधियों को चलाने के लिए उसे शरीर जैसे किसी साकार माध्यम का आश्रय लेना पड़ता है।

प्रश्न 2: विराट ब्रह्म और जीवधारी में क्या अंतर है? मनुष्य में चेतना का स्तर कैसा है?

उत्तर: पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त सत्ता को विराट ब्रह्म या परमात्मा कहते हैं, जो सर्वव्यापी और न्यायकर्ता है। इसी विराट ब्रह्म का एक छोटा अंश जीवधारियों के भीतर काम करता है। मनुष्य में इस चेतन अंश का स्तर अन्य जीवों की तुलना में ऊँचा और अधिक होता है, जिसके कारण उसके अंदर अनेक शक्तियाँ (विभूतियाँ) छिपी हुई अवस्था में मौजूद रहती हैं।

प्रश्न 3: प्रतिभा किसे कहते हैं? इसका सदुपयोग और दुरुपयोग क्या परिणाम देता है?

उत्तर: मनुष्य के भीतर मौजूद शक्तियों का सघन और विस्तृत रूप ही प्रतिभा कहलाता है। जब इस प्रतिभा का उपयोग अच्छे उद्देश्यों (लोकमंगल) के लिए किया जाता है, तो यह व्यक्ति को महामानव बना देती है। इसके विपरीत, यदि इसका दुरुपयोग अनुचित कार्यों में किया जाए, तो व्यक्ति दैत्यों जैसा व्यवहार करने लगता है और अपने तथा दूसरों के लिए विपत्ति का कारण बनता है।

प्रश्न 4: मनुष्य की सबसे बड़ी भूल क्या है और इसका क्या परिणाम होता है?

उत्तर: मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है कि वह तत्काल कर्मफल चाहता है और धैर्य खो देता है। इस अधीरता के कारण वह सिर्फ तात्कालिक और क्षणिक लाभ देख पाता है और अपनी दूरदर्शिता खो देता है। इसी भूल के कारण वह जीवन के सही मार्ग से भटक जाता है, उसके चरित्र में भ्रष्टाचार आ जाता है और उसे अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं।

अध्याय 2: अनास्था की जननी—दुर्बुद्धि

प्रश्न 1: दुर्बुद्धि ने मनुष्य को कैसा बना दिया है और इसका क्या परिणाम हुआ है?

उत्तर: दुर्बुद्धि ने मनुष्य को वर्जनाओं और मर्यादाओं को तोड़ने वाला उद्धत स्वभाव का वनमानुष बना दिया है। इसने समाज में अनास्था को जन्म दिया है और ईश्वर के संबंध में तरह-तरह की भ्रांतियाँ फैलाई हैं। इसी के कारण मनुष्य स्वेच्छाचारी और अनाचारी बनकर अपने लिए ही कठिनाइयाँ पैदा करता है।

प्रश्न 2: लेखक के अनुसार मनुष्य की दो प्रमुख भूलें कौन सी हैं?

उत्तर: लेखक के अनुसार मनुष्य की पहली भूल ईश्वर की सत्ता के प्रति अनास्था रखना है, जो उसे स्वेच्छाचारी बनाती है। दूसरी भूल है अपने वास्तविक स्वरूप, कर्तव्य और उद्देश्य को भूल जाना तथा अपने सबसे निकट रहने वाले ईश्वर से संबंध जोड़ने की उपेक्षा करना।

प्रश्न 3: ईश्वर से निकटता बनाने का प्रयास क्यों महत्वपूर्ण है?

उत्तर: जिस प्रकार एक ऊँचे तालाब से नाली द्वारा पानी निचले गड्ढे में आकर उसे भर देता है, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान ईश्वर से निकटता का प्रयास करने पर मनुष्य का जीवन भी ऊँचा उठता है। सज्जनों और महामानवों की निकटता भी मनुष्य को लाभकारी गुण प्रदान करती है, इसलिए सबसे बड़ी शक्ति ईश्वर से जुड़ना अत्यंत लाभदायक है।

अध्याय 3: ईश्वर सम्बन्धी भ्रान्तियाँ

प्रश्न 1: ईश्वर के बारे में समाज में क्या गलत धारणा फैली हुई है?

उत्तर: समाज में यह गलत धारणा फैली हुई है कि ईश्वर किसी भूत-प्रेत की तरह है जो सिर्फ उपहार बटोरता है और थोड़ी-सी पूजा-पाठ से खुश होकर किसी की भी अनुचित मनोकामना पूरी कर देता है। यह भी माना जाता है कि वह छोटी-सी गलती पर क्रोधित हो जाता है और भक्त को दंडित करता है।

प्रश्न 2: क्या चापलूसी और उपहारों से ईश्वर को प्रसन्न किया जा सकता है?

उत्तर: नहीं, ईश्वर को उपहारों और चापलूसी से प्रसन्न नहीं किया जा सकता। ईश्वर सिद्धांतों पर आधारित एक नियामक सत्ता है, न कि कोई लालची व्यक्ति जो किसी की सही-गलत मनोकामना पूरी कर दे। यदि ऐसा होता तो दुनिया से विवेक और न्याय ही समाप्त हो जाता।

अध्याय 4: दैवी सत्ता की सुनियोजित विधि-व्यवस्था

प्रश्न 1: आत्मबल को सर्वोपरि क्यों कहा गया है?

उत्तर: आत्मबल को धनबल, शस्त्रबल या सत्ताबल से भी सर्वोपरि माना गया है क्योंकि आत्मबल से जो कार्य संभव हैं, वे अन्य किसी बल से नहीं हो सकते। बुद्ध, गाँधी, विवेकानन्द जैसे महापुरुषों ने आत्मबल के सहारे ही समाज का असाधारण हित किया। पुरुषार्थ के पीछे यदि आत्मबल न हो, तो वह प्रभावहीन हो जाता है।

प्रश्न 2: युग परिवर्तन जैसे बड़े कार्यों के लिए मानवीय पुरुषार्थ के साथ और क्या आवश्यक है?

उत्तर: युग परिवर्तन जैसे बड़े और कठिन कार्यों के लिए मानवीय पुरुषार्थ के साथ-साथ दैवी शक्ति का सहयोग भी अत्यंत आवश्यक है। जिस प्रकार पीछे की हवा वाहन की गति बढ़ा देती है, उसी प्रकार दैवी शक्ति का सहयोग बड़े लक्ष्यों को प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं को दूर करता है और सफलता सुनिश्चित करता है।

अध्याय 5: आत्मबल से उभरी परिष्कृत प्रतिभा

प्रश्न 1: आत्मबल कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर: आत्मबल प्राप्त करना सरल है। इसके लिए दो प्रमुख कार्य करने होते हैं - आत्मशोधन (अपने व्यक्तित्व को शुद्ध करना) और लोकमंगल (संसार की भलाई के कार्य)। इन दो आधारों को जीवन में अपनाने से व्यक्तित्व में प्रखरता आती है और दैवी कृपा सहज ही बरसने लगती है, जिससे आत्मबल स्वयं ही भीतर से उभरता है।

प्रश्न 2: आत्मशक्ति की प्रखरता का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर: आत्मशक्ति की प्रखरता समूचे वातावरण को बदल सकती है। जैसे धोबी की भट्टी में मैले कपड़े साफ हो जाते हैं और आग में तपकर लोहा फौलाद बन जाता है, उसी प्रकार उच्चस्तरीय प्रतिभाओं का पौरुष जब कार्यक्षेत्र में उतरता है तो वह समाज में सकारात्मक और बड़ा बदलाव लाता है।

प्रश्न 3: चाणक्य, समर्थ रामदास और भगवान कृष्ण ने अपने शिष्यों का मनोबल कैसे बढ़ाया?

उत्तर: चाणक्य ने चंद्रगुप्त को उसकी सामान्य पृष्ठभूमि भुलाकर एक विजेता की तरह सोचने को कहा। समर्थ रामदास ने शिवाजी को भवानी की तलवार देकर पराजय की बात न सोचने के लिए प्रेरित किया। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि शत्रु पहले ही मारे जा चुके हैं, उसे तो बस श्रेय लेने के लिए युद्ध करना है, जिससे अर्जुन का संशय दूर हुआ।

अध्याय 6: मानवीय पुरुषार्थ एवं दैवी शक्ति का युग्म

प्रश्न 1: साहस का क्या महत्व है? यह दैवी कैसे हो सकता है?

उत्तर: साहस अपने आप में एक ईश्वरीय कृपा है जो कठिनाइयों को दूर करता है। ऊँचे और महान उद्देश्यों के लिए जब साहस उभरता है, तो साधनों की कमी के बावजूद यह ऐसा मनोबल पैदा करता है कि हार भी जीत में बदल जाती है। ऐसा सत्साहस प्रायः दैवी ही होता है, क्योंकि यह स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ के लिए होता है।

अध्याय 7: पात्रता से दैवी अनुग्रह की प्राप्ति

प्रश्न 1: दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए पात्रता क्यों आवश्यक है?

उत्तर: दैवी कृपा प्राप्त करने के लिए पात्रता आवश्यक है क्योंकि ईश्वर का नियम न्याय पर आधारित है। जैसे बारिश में खुले में रखा बड़ा बर्तन ही पूरा भरता है और ऊँचे टीले सूखे रह जाते हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी पात्रता (योग्यता) विकसित करता है, उसे ही दैवी अनुग्रह सहज रूप से प्राप्त होता है।

प्रश्न 2: आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए व्यक्ति में कौन-से गुण होने चाहिए?

उत्तर: आध्यात्मिक सिद्धियाँ, जिन्हें ईश्वर की पुत्रियाँ कहा गया है, उन्हें प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सर्वांग सुंदर अर्थात् भीतर और बाहर दोनों से पवित्र और प्रामाणिक होना चाहिए। पात्रता, पवित्रता और प्रामाणिकता ही दैवी शक्तियों के अवतरण के लिए पहली शर्त है।

अध्याय 8: उदारता जन्मदात्री है प्रामाणिकता की

प्रश्न 1: उदारता का जीवन में क्या महत्व है? ईश्वर की कृपा किन्हीं मिलती है?

उत्तर: उदारता एक आवश्यक सद्गुण है जिसमें करुणा, ममता और सेवा का भाव होता है। ईश्वर की कृपा उन्हीं को मिलती है, जो दूसरों पर कृपा करने में रुचि रखते हैं। निष्ठुर और संकीर्ण स्वार्थ वाले लोगों से ईश्वर की अनुकम्पा भी दूर हो जाती है। प्रामाणिक व्यक्ति के व्यवहार में उदारता अवश्य होती है।

प्रश्न 2: पूजा-पाठ का वास्तविक उद्देश्य क्या है?

उत्तर: पूजा-पाठ का वास्तविक उद्देश्य केवल कर्मकांड करना नहीं, बल्कि आत्म-परिष्कार (स्वयं को सुधारना) और सत्प्रवृत्ति-सम्बर्धन (अच्छी प्रवृत्तियों को बढ़ाना) है। यदि इन क्रियाओं से व्यक्ति के स्वभाव और भावनाओं में सुधार हो रहा है, तभी उनका लाभ मिलता है, अन्यथा वे केवल आत्म-प्रवंचना (खुद को धोखा देना) बनकर रह जाती हैं।

अध्याय 9: जीवन-साधना एवं ईश-उपासना

प्रश्न 1: साधना का सही अर्थ क्या है? इसके तीन चरण कौन-से हैं?

उत्तर: साधना का सही अर्थ है 'जीवन-साधना', जिसका तात्पर्य है अपने साथ कड़ाई और दूसरों के साथ उदारता का व्यवहार करना। कड़ाई का अर्थ है कठोर अनुशासन का पालन करना। इसके तीन प्रमुख चरण हैं- इन्द्रिय-संयम, अर्थ-संयम, और विचार-संयम, जिसे तत्परता भी कहते हैं।

प्रश्न 2: पूजा के विभिन्न प्रतीक जैसे दीपक, पुष्प और जप क्या सिखाते हैं?

उत्तर: पूजा के प्रतीक हमें जीवन जीने की कला सिखाते हैं। दीपक जलाना हमें दीपक की तरह जलकर दूसरों को प्रकाश देने की प्रेरणा देता है। पुष्प चढ़ाना जीवन को सुंदर और कोमल बनाने का संदेश देता है। जप का उद्देश्य मन में अच्छे विचारों को स्थापित करना है।

अध्याय 10: प्रखर प्रतिभा का उद्गम स्रोत

प्रश्न 1: प्रखर प्रतिभा का उद्गम स्रोत क्या है? यह मनुष्य जीवन में कैसे प्रकट होती है?

उत्तर: प्रखर प्रतिभा का उद्गम स्रोत ईश्वर है, जिसे सत्प्रवृत्तियों का समूह भी कहा जा सकता है। यह मनुष्य के जीवन में गरिमामयी आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के रूप में प्रकट होती है। पूजा-उपासना के सभी कर्मकांडों का उद्देश्य इसी आंतरिक श्रेष्ठता को प्राप्त करना और बढ़ाना है।

प्रश्न 2: बड़ी उपलब्धियों के लिए व्यक्ति को कौन-से दो मोर्चे संभालने पड़ते हैं?

उत्तर: बड़ी उपलब्धियों के लिए व्यक्ति को दो मोर्चे संभालने पड़ते हैं। पहला, अपनी निजी कमजोरियों और दुर्गुणों को मिटाना, क्योंकि ये शक्ति को नष्ट कर देती हैं। दूसरा, अपनी योग्यता को बढ़ाना और उसे सही दिशा में लगाना, क्योंकि दुर्बल व्यक्ति बड़े काम नहीं कर सकता।

अध्याय 11: युग परिवर्तन प्रतिभा ही करेगी

प्रश्न 1: युग निर्माण जैसा बड़ा कार्य कैसे संभव हो सकता है?

उत्तर: युग निर्माण जैसा अत्यधिक भारी काम केवल वरिष्ठ और प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों के सहयोग से ही संभव हो सकता है। यदि प्रतिभाओं के परिष्कार और उनके विकास का क्रम चल पड़े, तो इन दैवी अनुदानों के सहारे विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान करना भी सरल हो जाएगा।

प्रश्न 2: क्या प्रतिभा केवल कृपा पर निर्भर है? भूतकाल में इसके क्या उदाहरण मिलते हैं?

उत्तर: नहीं, प्रतिभा का निखार किसी की कृपा पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह पूरी तरह व्यक्ति के अपने प्रयास और मनोबल पर निर्भर करता है। भूतकाल में अगस्त्य का समुद्र सोखना, हनुमान का पर्वत उठाना और भगीरथ द्वारा गंगा को धरती पर लाना जैसे कार्य बताते हैं कि दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति असंभव को भी संभव बना सकता है।

अध्याय 12: अनगढ़ता मिटे, सुगढ़ता विकसित हो

प्रश्न 1: मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे कर सकता है?

उत्तर: मनुष्य का व्यक्तित्व अनगढ़ स्थिति में होता है, जिसे कुशल माली की तरह सुधारने की आवश्यकता होती है। व्यक्ति को अपने गुण, कर्म और स्वभाव को लगातार उत्कृष्ट बनाना चाहिए और साथ ही ईश्वर से सान्निध्य स्थापित कर उसकी शक्ति को आकर्षित करना चाहिए। इन दोनों क्रियाओं से प्रगति का मार्ग खुलता है।

अध्याय 13: बड़े प्रयोजन के लिए प्रतिभावानों की आवश्यकता

प्रश्न 1: नवनिर्माण के लिए किस प्रकार की प्रतिभाओं की आवश्यकता है?

उत्तर: नवनिर्माण के लिए ऐसी प्रतिभाओं की आवश्यकता है जो दूरदर्शी, कुशल, तत्पर और चरित्रवान हों। उनका हृदय उज्ज्वल होना चाहिए और उनके पास समाज के लिए पर्याप्त समय और साधन होने चाहिए। उन्हें केवल एक पक्ष नहीं, बल्कि बहुमुखी आवश्यकताओं को संभालने में दक्ष होना चाहिए।

प्रश्न 2: युगसृजन में मनुष्य और स्रष्टा (ईश्वर) की क्या भूमिका होगी?

उत्तर: युगसृजन जैसे महान कार्य में प्रमुख भूमिका स्रष्टा की उच्चस्तरीय सृजन-शक्तियों की ही होगी। मनुष्य की भूमिका उन शक्तियों के माध्यम के रूप में होगी। योजना, प्रेरणा और व्यवस्था ईश्वर की होगी, लेकिन उसका श्रेय उन लोगों को मिलेगा जिनकी आत्मा में युग के अनुरूप श्रद्धा और लगन जाग्रत हो चुकी है।

अध्याय 14: सद्बुद्धि का उभार कैसे हो?

प्रश्न 1: मनुष्य के सभी दुःखों का मूल कारण क्या है और उसका निवारण कैसे हो सकता है?

उत्तर: मनुष्य के सभी दुःखों, जैसे- दरिद्रता, रुग्णता, और शत्रुता का मूल कारण एक ही है- अविवेक या अदूरदर्शिता। इसका निवारण केवल सद्ज्ञान से हो सकता है। जहाँ सुमति (अच्छी बुद्धि) होती है, वहाँ सभी प्रकार की सुख-संपत्ति स्वयं ही आ जाती है।

प्रश्न 2: मनःस्थिति परिस्थितियों का निर्माण कैसे करती है?

उत्तर: मनःस्थिति ही परिस्थितियों का निर्माण करती है। आशा और विश्वास रखने वाला व्यक्ति कठिन रोगों से भी जीत जाता है, जबकि डरपोक और शंकालु व्यक्ति साधारण बीमारी में भी हार मान लेता है। हमारा जीवन गीली मिट्टी की तरह है, जिसे हम अपने विचारों और दृष्टिकोण से कोई भी आकार दे सकते हैं।

अध्याय 15: इन दिनों की सर्वोपरि आवश्यकता

प्रश्न 1: आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता क्या है?

उत्तर: आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता विचार क्रांति है। लोगों के मन-मस्तिष्क में छाई हुई दुर्भावना और गलत चिन्तन को बदलना ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यदि विचारों को श्रेष्ठ बना दिया जाए, तो बाकी सभी सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याएं अपने आप सुलझ सकती हैं, क्योंकि विचारों से ही कर्म बनते हैं।

प्रश्न 2: विचार क्रांति के लिए केवल उपदेश क्यों काफी नहीं हैं?

उत्तर: विचार क्रांति के लिए केवल उपदेश काफी नहीं हैं, क्योंकि लोग किसी की बातों पर तब तक विश्वास नहीं करते जब तक उपदेशक स्वयं उन आदर्शों पर खरा न उतरता हो। इसके लिए ऐसे प्रखर प्रतिभा वाले

व्यक्तियों की आवश्यकता है जो मन, वचन और कर्म से आदर्शों के प्रति समर्पित हों, ताकि उनका जीवन दूसरों के लिए प्रेरणा बन सके।